

मैं ही बीते समय का वह अभागा कुआं हूँ जो कभी समूचे गांव का पनघट था। ग्रामीण संस्कृति का एक ऐसा जीवंत दस्तावेज जिसे समय की अदालत ने बिना सुने ही एक पक्षीय फैसला कर मेरे अस्तित्व को नकार दिया। कितनी चहल-पहल रहती थी मेरी मुंडेर पर। दिन भर पांखी अपनी प्यास बुझाते। सुबह स्नान करने वाले बाल वृद्धों की भीड़ तो सायंकाल पणिहारियों का पनीला जमघट।

मैं उस दृश्य का स्मरण कर आज भी रोमांचित हो उठता हूँ जब इठलाती अल्हड़ संध्या के वक्षांचल से लुढ़कती सुरमई सांझ से पूर्व गोधूलि वेला में तरुण तन्वंगियों की पायल की रुनझुन की आहट सुनाई देने लगती थी। भरी दुपहरी की तपिश से अलसाया मेरा मन सद्यः यौवना अनिच्छ रूपसियों का रूपरस पान करने को प्रलुब्ध हो उठता था। घूंघट से अवगुंठित नव वधुएं जब मेरी मुंडेर पर धीरे से अपना घट रखती तो मेरे मनघट का रोम-रोम स्पंदित हो उठता। घूंघट का पट खोल मेरे घट का पानी निकालने के लिए जैसे ही वे मुझे नेह से निहारती तो मेरे जलदर्पण में उनके सुकोमल लावण्य की रूपश्री दमक उठती।



खंजन से नुकौले नयन, कमान सी खिंची भौंहें, गुलाब की आभायुक्त अधरों पर जाड़े की धूप सी पसरी स्मित मुस्कान, दाढ़िम दसनों पर मुग्धा सी शुकनासिका, लोल कपोलों पर लटकी अलकावलि और आंचल में कसे उन्नत पीन पयोधरों की किंचित झलक पाकर मेरा शीतल जल उद्वेलित हो उठता तथा अपनी तरंगे भूल कर क्षण भर के लिए सम्मोहन-शर से बिंधा ठहर जाता।

मेरी विकट मनोःस्थिति तो तब होती जब ऐसी अनेक नवैटाएं एक साथ अपना घट पासती। मुझे लगता जैसे काली-कजरारी घटाओं का सीना चीर कर बलात सौ-सौ चांद एक साथ उदित हो मुझ पर मुदित हो गए हों। किसके घट में समाऊं और किस के घट से उतर जाऊं इसी उहापोह में झबोले के साथ मेरी तंद्रा टूटती। मेरा हर्षित जल झिलमिल करने लगता और गहरे गह्वरों में समाया जल मेरी आंतरिक शिराओं से झर-झर झरने लगता और जल स्तर स्वतः ही ऊंचा हो उठता।

मेरे पनघट पर न जाने कितनी-कितनी अलबेली नवेलियों के मनघट रीते होते थे। सतरंगी शृंगार से लकदक करती पणिहारिणें देवरानी-जेठानी से जुड़ी सरसता, सास-ननद के तानों को साझा करती और चंचल चितवन के तीखे तीरों से मनचलों के मन का संधान करतीं। पास-पड़ोस की खबरों का आदान-प्रदान होता, सहेलियों का मेल-मिलाप होता तथा एक-दूसरे के वस्त्राभूषणों को लेकर कुटिल-कटीले कटाक्ष भी होते। मुझे आश्चर्य तो तब होता जब सिर पर दो-तीन जल घट, एक हाथ में भरी बाल्टी और कांधे पर नेजू का वजन धारे देर तक बतियाती रहती और पतली कमर में सिर के वजन से लचक भी नहीं आती।

मेरी मुंडेर पर ये जो निशान देख रहे हो न! ये उन्हीं रमणियों की रज्जू की रसीली स्मृतियां हैं जो मुझे नेह से निहार कर अपने घट में स्नेह का निर्मल नीर और मनघट में चितवन की चुहुल भर के ले जाती थीं। यौवन से उन्मत्त उनकी गर्वीली ठसक से युवकों के मन दरक-दरक जाते और आह भरी टीस तीक्ष्ण कटारी की तरह कलेजे में सरक-सरक जाती।

सामने एक पीपल का पेड़ था। लोग स्नान कर उस पर मेरा जल अर्पित करते थे। मुंडेर से सही एक सदानिरी खेळ थी। खेळ के पानी से पशु अपनी प्यास बुझाते लेकिन ये सब अब बीते जमाने की बातें हो गई हैं। समय बदला, परिवेश भी बदला। मेरे सीने में लोहे का मोटा पाइप गहरे उतार दिया गया और मैं ईसा की तरह सूली पर टंगा उफ तक न कर सका।

अब मैं एक निर्जन, निरजल और निरर्थक स्मृति स्थल भर रह गया हूँ। लोगों ने मुझे कचरा पात्र बना डाला। धीरे-धीरे मैं पाट दिया गया। अब तो मेरी मुंडेर पर कौवा भी नहीं आता। वह जानता है कि मैं रीत गया, बीत गया हंसी पात्र हूँ। अब तो मेरी आंखों के कूप भी सूख गए हैं। अपनी दुर्दशा पर दो बूंद आंसू भी अर्पित नहीं कर सकता। बस...। अब तो उस समय की प्रतीक्षा है जब सदियों बाद सभ्यता की खुदाई में मेरे अवशेष मिलेंगे तो कूप संस्कृति पर चर्चा कर मेरी संतानें गौरवान्वित होंगी। किन्तु आप इतने निष्ठुर मत बनना। अभी भी समय है। किसी गांव-ढाणी के शेष कुएं के पनघट को देखना। उपर्युक्त दृश्य का दर्शन करना और अपनी इस सांस्कृतिक विरासत को स्मृति शेष होने के स्थान पर इसके संरक्षण का जतन करना। तुम्हें प्रसाद स्वरूप मेरा मीठा, शीतल एवं हितकारी तरल अमृत अवश्य मिलेगा। आशा है आपके मन में जल चेतना के साथ कूप संस्कृति का भी पुनर्जागरण होगा। इसी आशा के साथ यह अंक आपके हाथों में...

वदरशिम